परस्परोपग्रहोजीवानाम्

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

परस्परोग्रहोजीवनाम् का अर्थ है सभी प्राणी परस्पर मिलकर सहअस्तित्व के साथ रहे। कोई किसी से बैर न करे, कोई किसी से रागद्वेष न करे। यही इस सूत्र का हार्द्र है। यह संसार सबका है किसी एक व्यक्ति या प्राणी का नहीं। इसलिए इसका उपभोग सभी संयम पूर्वक करें कोई किसी के जीवन में हस्तक्षेप न करे। प्रकृति मानव को सभी चीजे उपलब्ध करायी है। सूर्य का प्रकाश सभी लोगों के लिए है। वायु सभी के लिए है। सम्पूर्ण वायुमण्डल सभी के लिए है आवश्यकता है इनके सदुपयोग की। यदि मानव त्यागपूर्वक इनका उपयोग करता है तो प्रकृति का खजाना कभी समाप्त होने वाला नहीं है। प्रकृति ने खुब दिया है। कबीरदास जी ने लिखा है–

साईं इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय,

मैं भी भूखा न रहूं साधु न भूखा जाय।

मानव एक सामाजिक प्राणी है स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ की चेतना उसमें समाहित है अहिंसा की वृत्ति भी उसके अंतर्गत है। अहिंसा का तात्पर्य है जीव हिंसा न करना। इसके साथ ही साथ प्राणियों के साथ मैत्री, मुदिता, सहिष्णुता, समता आदि भी अहिंसा के ही प्रर्याय है। सादगी का भी अपना एक दर्शन है, इसे हम आत्मशांति का दर्शन कह सकते है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपने आपको जो वह है उससे भी अधिक श्रेष्ठ और प्रशंसनीय दिखाई देने का भाव विद्यमान रहता है। यह भाव इतना श्रेष्ठ और व्यापक होता है कि इसको समाप्त कर देना अत्यंत दुष्कर होता है। इसके अनेक कारण हो सकते है, सबसे बड़ा कारण तो यह है कि प्रारंभिक स्तर पर इसे कोई बुरा भाव नहीं समझा जाता। इतना ही नहीं अधिकतर तो इस भाव को चारों तरफ से प्रशंसा ही मिलती है, इसका परिणाम यह होता है कि भाव व्यक्ति के मन में दिनों–दिन प्रगाढ़ होता जाता है और इतना अधिक फैल जाता है कि जिसे प्रारंभ में अच्छाई समझा गया वह भोंडा प्रदर्शन मात्र बनकर रह जाता है। प्रदर्शनेच्छा से अभिभूत मानव

अपने खान–पान, पहनावे से लेकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जहाँ तक की पारस्परिक व्यवहारों में भी एक नाटक ही करता रहता है, उसकी सारी बुद्धि केवल एक बात की तरफ केन्द्रित हो जाती है कि वह अच्छा कैसे दिखाई दे। व्यक्ति अपने आप में कैसा भी है वह उसकी वास्तविकता है। जब वास्तविकता को छुपाकर केवल दिखावा करने की प्रवृत्ति चल पड़ती है तो यह एक ऐसी प्रवृत्ति है कि उसका अंत ही कठिन हो जाता है। इनमें कोई संदेह नहीं कि मानव ने अपने रहन–सहन और व्यवहारों की नग्नता को ओट देने के लिए एक सभ्यता का निर्माण किया है। सभ्यता के लोक व्यापी प्रतिमान होते हैं और उन प्रतिमानों की सुरक्षा करना प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति के लिए अनिवार्य हो जाता है। सभ्यता के प्रतिमानों की सुरक्षा को हम प्रदर्शन नहीं कह सकते। प्रदर्शन रूप प्रतिमान वे होते हैं जिनमें सभ्यता के भाव मुख्य नहीं होकर प्रदर्शन के भाव तीव्र होते हैं। अपने ठाठ–पाट वैभव और देह को अन्य व्यक्तियों के सामने अलंकृत करके प्रस्तुत करना, वह प्रदर्शन है जिसे आम व्यक्ति साश्चर्य देखा करे और उस तरफ आकर्षित हों किन्तु यथार्थ में वह भव्यता जो दिखाई देती है, होती नहीं है। सभ्यता के प्रतिमान की सुरक्षा में भी कुछ अंशों में तो यह होता है किन्तु वह स्थापित लोक स्वीकृत प्रतिमान होता है। अतः वह हेय नहीं है। जीवन को जिन महापुरुषों ने बहुत गहरे तक समझा है, उन्होंने प्रदर्शन दिखावा और आडम्बर को नितान्त अनावश्यक और हेय घोषित किया है। शास्त्रों में आडम्बर का स्पष्ट निषेध है। "सव्वे आभरणा भारा" कह कर हमारे तत्वज्ञों ने अलंकार आदि सभी प्रदर्शन प्रदायक वस्तुओं को भार स्वरूप घोषित कर उन्हें त्याग देने का संदेश दिया है। अत्यंत श्रम और बौद्धिक प्रक्रिया पूर्वक व्यक्ति जो धन कमा रहा है उसे केवल प्रदर्शन और दिखावे में पानी की तरह व्यर्थ बहाए जा रहा है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न होकर भी प्रदर्शन के आवेग में फिर विपन्नता की स्थिति में पंहुचा जाता है। करुणा मानवीय संवेदना का एक ऐसा भाव है जिसमें मानव का हृदय विगलित होता चला जाता है। करुणा भाव कहीं भी, यहां तक कि नितांत अपरिचित प्राणी को भी पीड़ा–ग्रस्त देखकर उभर सकता है। करुणा भाव से ही संवेदना जगती है, व्यक्ति या प्राणी जो पीड़ित है उसकी छटपटाहट कभी–कभी द्रष्टा के मन में ऐसी पीड़ा पैदा कर देती है। कभी–कभी तो करुणाशील व्यक्ति रोते हुए दुःखी प्राणी के साथ स्वयं रोने लगता है। वह दुःखी के दुःख को अपने आप में

अनुभव करता है। यह संवेदना करुणा भाव से ही जग पाती है। करुणा वस्तुतः एक आत्म भाव है। आर्तग्रस्त प्राणी तो निमित्त मात्र होता है। सरल और सौम्य मानसिकता में करुणा भाव का निश्चित अस्तित्व पाया है। परमार्थ की आराधना में करुणा भाव का सर्वाधिक महत्व है, सच पूछा जाए तो करुणा के बिना परमार्थ हो ही नहीं सकता। जैन शास्त्रों में करुणा का ही पर्यायवाची शब्द अनुकम्पा है। जटायु को तड़पता देख श्री रामचन्द्रजी स्वयं विगलित हो गये। उन्होंने सीता को ढूंढ़ना छोड़ दिया और जटायु की सेवा करने लग गये। उस घायल पक्षी को गोद में उठाकर गले लगाया, प्यार से सहलाया। असीम पीड़ा से वह तड़प रहा था। श्री रामचन्द्रजी भी उसका दुःख देख रोने लगे थे। जटायु के साथ राम का हृदय भी कांप रहा था, यह अनुकम्पा भाव शुद्ध आत्म भाव था।